जन्मशताब्दी पर प्रकाशित

गिजुभाई ने कहा

शिक्षकों, माता-पिताओं और
शिक्षाप्रेमियों के विचारार्थ
एक सृजनशील व प्रयोगनिष्ठ
शिक्षक के उद्गार

प्रकाशक
गुजराती समाज
द्वारा हिम्मतलाल पारीख
कोटगेट, बीकानेर–334001



गिजु भाई

जन्म : 15 नवम्बर, 1885

देहावसान : 23 जून, 1939

हमारे राष्ट्रीय बाल-शिक्षक

देश के भावी नागरिकों की शिक्षा का स्वरूप क्या और कैसा हो, उनके माता-पिता, अभिभावकों और अध्यापकों का व्यवहार कैसा हो, उन्हें शिक्षण का कैसा वातावरण दिया जाए, शिक्षण उपकरण कैसे हों, और कैसी कार्य-विधि का संयोजन किया जाए, इस बारे में सैद्धान्तिक बातें कहने वाले तो बहुत हुए हैं, करके दिखाने वाले बहुत कम जन्मे हैं।

भारत से बाहर जो काम मेरिया मोंटेसरी, फ्रोबेल या पेस्तोलोजी ने किया था, अपने यहाँ वही काम किया गुजरात के एक प्रयोगनिष्ठ शिक्षक गिरिजाशंकर बधेका ने, जो गिजुभाई के नाम से विख्यात हैं। भावनगर में रहते हुए गिजुभाई ने बाल-शिक्षण का एक अनुपम प्रयोग किया था। उस काल की परिस्थितियों में तो वह प्रासंगिक था ही, मुझे लगता है, आज के हालात में भी अभी उसकी उपयोगिता बहुत है। बल्कि, मुझे तो गिजुभाई के शिक्षा संबंधी विचार आज चुनौतीपूर्ण लग रहे हैं।

15 नवम्बर 1885 में भावनगर के पास एक गांव में जन्म लेने वाले गिजुभाई ने, बहुत ऊँची शिक्षा नहीं पाई थी। अपने पिता की तरह उन्होंने भी वकालत का काम शुरू किया था, पर सच पूछो तो वकालत में उनकी रुचि थी नहीं। घर में पुत्र का आगमन होने के साथ ही उनका चिंतन बाल-शिक्षा की ओर प्रबलतर होता गया। क्योंकि पढ़ाई को लेकर स्वयं उनकी बाल्यकाल की यादें कोई बहुत आनन्द-दायी और प्रीतिकर नहीं थीं। बच्चों के साथ मार-पीट, डांट-डपट, अनचाही चीज़ समझकर उन्हें उपेक्षित करना, कदम-कदम पर फटकार, उपेक्षा, नसीहतें, न कहीं जाने की छूट, न स्वेच्छा से कोई काम करने की छूट, बंधन, भय और गुलामी का जीवन! स्कूल में शिक्षक

और घर में माता-पिता–दोनों ओर यातना की चक्की ! गिजुभाई को यह सब अशैक्षिक, अमनोवैज्ञानिक अमानवीय लगा, और एक दिन वकालत को त्याग कर वे बाल-शिक्षण के क्षेत्र में कूद पड़े ।

गिजुभाई ने बाल-शिक्षण के क्षेत्र में कार्य करने वाले विचारकों एवं शिक्षाविदों के ग्रंथ पढ़े, और उनमें से जो ग्राह्य लगा, उसे ग्रहण किया । सबसे ज्यादा प्रभावित किया इटली की महान बाल-शिक्षाविद मेरिया मोंटेसरी के विचारों ने । सन् 1920 में उन्होंने भावनगर में दक्षिणामूर्ति बाल-मंदिर स्थापित किया, और मोंटेसरी के विचारों को आजमा कर देखा । बेशक, मोंटेसरी के अवदान को उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है, पर देश-काल की आवश्यकता के अनुरूप वे अपनी ओर से वैसा ही कुछ मिलाते-जोड़ते गए, जैसा मधुमक्खी मधु बनाने की प्रक्रिया में जोड़ती है ।

उन दिनों देश गुलाम था । गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक आंदोलन चल रहा था । पूरा देश जी-जान से गांधीजी को सहयोग दे रहा था ! ऐसे में घर-परिवार ही नहीं, पूरा समाज जागरूक था । माता-पिता ही चिंतित और व्यथित नहीं थे, बच्चे भी क्रियाशील थे । युगीन राष्ट्रीय एवं सामाजिक आवश्यकताओं व मूल्यों का चिंतन करके गिजुभाई ने उन्हें बाल-शिक्षा का अंग बनाया । उन्होंने तय किया कि देश के भावी नागरिकों को स्वतंत्रचेता, शांति-प्रिय, अहिंसक, समतावादी, अनुशासित, कर्मनिष्ठ, मेहनती, सृजनशील और उत्पादनशील बनाना जरूरी है । भावनगर का दक्षिणामूर्ति बाल-मंदिर बालकों की सृजनात्मक शक्ति की कर्मशाला बना । खेल-खेल में विविध विषयों का ज्ञान भी और परिवेश की पूरी जानकारी भी । बड़ी अद्‌भुत शिक्षण-पद्धति थी गिजुभाई की । उन दिनों हमारे वहां शिक्षा का एक अद्‌भुत वातावरण बना दिया था गिजुभाई ने । पहला काम उन्होंने यह किया, कि बच्चों की शिक्षा में माता और पिता, दोनों को समान रूप से हिस्सेदार बनाया । वे बाल-मंदिर में माता-पिताओं को आमंत्रित करते, उनसे बाल-समस्याओं पर विचार-विमर्श करते, उन्हें देश-विदेश के शिक्षाविदों और मनोविज्ञानवेत्ताओं के विचारों का प्रमाण देते और व्यावहारिक सुझाव भी पेश करते । माता-पिता और अध्यापकों के लिए गिजुभाई ने "शिक्षण-पत्रिका" का प्रकाशन किया था, जो गुजराती, मराठी और हिन्दी में भी निकलती थी । शिक्षकों और अभिभावकों के लिए उन्होंने डेढ़-दर्जन शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी थी, जो आज भी पठनीय हैं । उनमें से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कृति है–"दिवास्वप्न" । इसे अगर मैं शिक्षा का एक क्लासिक ग्रंथ कहूं, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । इंदौर के श्री काशिनाथ त्रिवेदी ने इसका हिन्दी में अनुवाद किया है, और राजस्थान सरकार के शिक्षा निदेशालय के त्रैमासिक "नया शिक्षक–टीचर टुडे" (जन-मार्च 84) में यह अविकल प्रकाशित हुआ है । साथ में अंग्रेजी अनुवाद भी है ।

"दिवास्वप्न" नामक पुस्तक को यदि शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी अध्यापक के लिए पढ़ना अनिवार्य किया जाता है, तो मैं समझता हूं, उन्हें नवाचारों और मौलिक परिवर्तनों की एक नई राह मिलेगी । इस काम के लिए केन्द्र-सरकार और राज्य सरकारों को विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है । यही नहीं, इसका सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया जाना चाहिए ।

गिजुभाई की अन्य पठनीय-मननीय पुस्तकें हैं—माबापो ने, मां बाप थवुं आकरूं छे, आ ते शी माथाफोड़ी, शिक्षक हो तो, मोंटेसरी पद्धति, प्रासंगिक मनन, शांत पळोमां, बाल-शिक्षण मने समझायुं तेम । पर ये तमाम पुस्तकें गुजराती भाषा में हैं । इनके हिन्दी में अनुवाद के प्रयत्न चल रहे हैं ।

आज हमारे देश में नई शिक्षा नीति की फिर से तलाश हो रही है, ऐसे में गिजुभाई के बाल-शिक्षण सम्बन्धी विचारों से बहुत कुछ ग्राह्य बातें ली जा सकती हैं ।

इस लघु पुस्तिका में गिजुभाई की उक्त पुस्तकों से मननीय उद्धरणों को संजोने का प्रयास किया गया है । शिक्षकों और शिक्षा-प्रेमियों के लिए ही नहीं, माता-पिताओं के लिए भी ये चिंतनीय हैं । गिजुभाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अध्ययनकर्त्ता, शिक्षाप्रेमी श्री रामनरेश सोनी ने इनका चयन और अनुवाद किया है । मेरा विश्वास है कि इन उद्धरणों का अध्ययन व आस्वादन करके यदि कोई शिक्षक चाहे तो लाखों छात्रों का भविष्य संवार सकता है ।

मैं भी गिजुभाई की कर्मस्थली का निवासी हूं । मैंने उन्हें काम करते देखा है । शिक्षा के जरिये सामाजिक परिवर्तन लाने का कैसा अद्भुत काम उन्होंने कर दिखाया था, इसका साक्षी मैं भी हूं । उस जमाने में मैं भी एक शिक्षक बना था । उनकी शैक्षिक विचारधारा ने मुझे भी बहुत गहराई तक प्रभावित किया था । मैं चाहता हूं, कम से कम हमारे शिक्षक बंधु तो उनके कार्यों और विचारों को जानें ही । 15 नवम्बर, 1985 को उस महान राष्ट्रीय शिक्षक की एक-सौवीं जन्मतिथि है । जन्म-शती के इस अवसर पर उनके विचारों की भेंट से बढ़कर अपने इस समाज को मैं और क्या उपहार दे सकता हूं !

मेरी कामना है कि **गिजुभाई ने कहा** नामक इस पुस्तिका को और भी संस्थाएं निःशुल्क छापें, वितरित करें और जन-जन तक पहुंचाएं । इसका अन्य भाषाओं में भी अनुवाद किया जाना चाहिए ।

कोट गेट, बीकानेर-334001 — **हिम्मत भाई पारीख**

शिक्षकों से

अपने शिक्षक भाई-बहनों से इस वक्त तो मैं इतना ही कहूंगा कि जब से दुनिया बनी है, तब से लेकर अब तक इसका उत्थान-पतन मात्र शिक्षकों पर ही निर्भर रहा है ।

जब-जब शिक्षक अपने पवित्र काम के प्रति वफादार रहे हैं, तब-तब दुनिया आगे बढ़ी है, और जब-जब वे बेवफा बने हैं, तब-तब दुनिया पीछे हटी है ।

शिक्षक जब सत्ता और सम्पत्ति के नीचे दबकर अपने व्यक्तित्व को कमजोर पड़ने देते हैं, तो प्रगति के कदम पीछे हटते हैं, और जब वे इन दोनों शक्तियों के सामने खड़े होकर इन्हें ठोकर मारते हैं, तो प्रगति का पैग़ाम आगे बढ़ता है ।

दृष्टि का प्रसार

तुम सिर्फ अपने बच्चों का ही विचार मत करो । जब तक तुम्हारे पड़ौसी के, तुम्हारे गांव के, तुम्हारे देश के, और पूरी जनता के बच्चों की दशा नहीं सुधर जाती, तब तक चाहे कितनी ही मेहनत कर लो, तुम्हारे बच्चों को सच्चा सुख, सच्ची सम्पत्ति और सच्चा जीवन नहीं मिल सकेगा ।

जब तुम अपने बच्चों के बारे में विचार करते हो, तो पूरी जनता के बच्चों को दृष्टि में रखकर सोचो ।

इससे भी बढ़कर ज्यादा अच्छा यह होगा कि तुम सबों के बच्चों का विचार करो । सबों के बच्चों में तुम्हारे बच्चे तो आ ही जाएंगे ।

स्वतंत्रता की शिक्षा

जो माता-पिता या जो शिक्षक बच्चों को और सब तरह की शिक्षा

तो देते हैं, पर एक खास तरह की शिक्षा नहीं देते, वे उनके दुश्मन हैं।

यह है निडर और स्वतंत्र बनने की शिक्षा।

निडर और स्वतंत्र बालक हर तरह से शिक्षित हैं। डरपोक व पराधीन बालक अनपढ़ से भी गये-गुजरे हैं। मूर्ख और पामर हैं।

शिक्षको और माता-पिताओ! युग का यह धर्म आप हर्गिज न भूलें।

अपंगता की शिक्षा

माता-पिता और शिक्षक कहते हैं: 'तू मत कर, मैं करता हूँ', 'तू मत बोल, मैं बोलता हूँ', 'तू मत चल, मैं चलता हूँ', 'तू मत लिख, मैं लिखता हूँ।'

आज तक इसी तरह का शिक्षण हमारे घरों और शालाओं में दिया जा रहा है बालकों को। परिणाम यह रहा कि आज का बालक अपंग बन गया।

जो अपंग है, वह पराधीन है। पराधीन याने परतंत्र, याने गुलाम।

कल का मालिक

आज के नन्हें बालकों को आज के गीत सुनाओ। कल यही बालक ऐसे ही गीतों की रचना करेंगे।

आज के नन्हें बालकों को आज की कहानियां सुनाओ। कल यही बालक ऐसी ही कहानियां सुनाएंगे।

आज के नन्हें बालकों को आज का इतिहास समझाओ। कल यही बालक ऐसा ही इतिहास गढ़ेंगे।

आज के नन्हें बालकों को आज के त्याग एवं समर्पण समझाओ। कल यही बालक ऐसे ही त्याग एवं समर्पण करके दिखाएंगे।

कारण, कि आज का नन्हा बालक कल का स्वामी है, कल का नेता है।

तन्मयता

शिक्षक तब सफल होता है, जब वह शिक्षार्थी के साथ तन्मय हो जाता है।

शिक्षार्थी तब सफल होता है, जब वह शिक्षक के साथ एकतार हो जाता है।

शिक्षक और शिक्षार्थी की एकरसता ही विद्या की उपासना है। यह शिक्षा चाहे क ख ग की हो या गीता की। जहां भी यह शिक्षा चलती है, वहीं विद्या देवी का मंदिर है, वहीं उसकी पूजा-अर्चना जारी रहती है।

सही शिक्षण

शिक्षण-कार्य बहते पानी जैसा है। जहां तक व्यक्ति की शिक्षा का सवाल है उसकी सम्पूर्ण क्षमताओं और मनोभावों को समझे बिना कुछ नहीं होगा। जिसे पढ़ना है, उसको जाने बिना, उसकी पसंद-नापसंद पर गौर किये बिना, शिक्षण निष्फल हो जाएगा।

शिक्षण की सार्थकता एक-दो विषय पढ़ा देने में, अथवा अमुक-अमुक कक्षा तक की तैयारी करा देने में—मैट्रिक या बी. ए. करा देने में नहीं है। सही शिक्षण तो व्यक्ति को उसकी अनंत शक्तियों का भान कराने में निहित है—यह रहस्य बताने में निहित है कि उन शक्तियों को कैसे प्राणवान बनाया जाए, कैसे उनका उपयोग किया जाए।

ऐसा करने के लिए मनुष्य की शक्तियों का सम्मान किया जाना चाहिए। उसके वैयक्तिक विकास को प्रथम स्थान देना चाहिए। पढ़ाने की बजाय उसे स्वयं ज्ञान का रास्ता ढूंढने देना चाहिए।

यह काम आज के शिक्षक का है।

जड़ों की संभाल

फूलों में खुशबू नहीं। कलियां पूरी खिलती नहीं। पत्ते मुरझा गए हैं। डालियां टेढ़ी-मेढी हैं। तने की छाल झड़ गई है।

क्या हम फूलों में खुशबू डालेंगे? अपने हाथों से कलियों को खोलेंगे? पत्तों की कोरें सुधार कर दुरुस्त करेंगे? उन पर रंग चढ़ायेंगे? डालियों को सुथार से छिलवा कर इकसार बनाएंगे? तने की छाल को न झड़ने देने के लिए तार से या धागे से बांधेंगे?

पर ऐसा करने से क्या वृक्ष अच्छा हो जाएगा?

नहीं।

तब क्या करना चाहिए?

करना तो यह चाहिए कि वृक्ष की जड़ों को संभालें। सड़ी हुई मिट्टी को कुरेद कर दूर हटाने का प्रयत्न करें एवं जड़ों में नियमित जल-सिंचन करें।

जड़ों की सड़ी मिट्टी दूर होगी, तभी वृक्ष नए सिरे से पल्लवित-पुष्पित हो सकेगा।

मनुष्य रूपी वृक्ष को विकसित करने के लिए भी क्या उसकी जड़ों के पास नहीं जाना चाहिए?

आइए, हम बालक को सुदृढ़ और स्वस्थ बनाएं।

पीटना बनाम लालच

बच्चों को पीटना अगर निर्बलता की निशानी है तो उन्हें लालच देना अधमता की निशानी है।

बच्चों को पीटना कायरता का सूचक है तो उन्हें लालच देना घूस-खोरी का सूचक है।

बच्चों को पीटना दानवता दर्शाता है तो उन्हें लालच देना दुष्ट प्रलोभन दर्शाता है।

बच्चों को पीटना एक अपराधपूर्ण कृत्य है तो उन्हें लालच देना और भी भयंकर अपराध-कृत्य है।

बच्चों को पीटना एक अत्याचार है, तो उन्हें लालच देना अपहरण करने जैसा काम है।

बच्चों को पीटना एक जुल्म है, तो उन्हें लालच देना एक शराब है।

खून का पानी

कल के शिक्षक ने सोचा था कि दंड और पुरस्कार देने से ही बालक में बुद्धि आएगी।

कल के शिक्षक ने सोचा था कि पाठ्य पुस्तकीय पाठ और कविता रटाने में ही ज्ञान धरा है।

कल के शिक्षक ने सोचा था कि उपदेश देने मात्र से विद्यार्थी नीतिवान और धर्मी बन जाएगा।

उसने सोचा था कि सख्त अनुशासन की बेड़ियां पहनाने से ही बालक संयमी बनेगा।

उसने सोचा था कि शिक्षण में स्वतंत्रता देंगे तो विद्यार्थी पढ़ेंगे-सीखेंगे नहीं, अतः उन्हें दबाकर ही रखना चाहिए ।

इसी क्रम में उसने ज्ञान का सम्पूर्ण क्षेत्र विद्यार्थियों की पढाई हेतु निर्धारित कर दिया और परीक्षा को ही एकमात्र जीवन-लक्ष्य मान-कर उसी की उपासना में अपने और विद्यार्थियों के खून का पानी किया ।

यह नहीं चलेगा

इस तरह से तो कोई भी सत्ता नहीं चल सकती, कि जो सत्ता होते हुए, सत्ता न होने का मात्र दिखावा करे, और ज्यादा से ज्यादा सत्ता के उपभोग का लोभ रखे ।

इस तरह से तो कोई भी धर्म नहीं चल सकता कि जो धर्म होते हुए, स्वयं उदार बनने का दिखावा करे, और ज्यादा से ज्यादा संकुचित रह कर संकीर्णता दिखाए ।

इस तरह से तो कोई भी शिक्षक नहीं निभ सकता कि जो शिक्षक होते हुए, स्वयं विद्यार्थियों की आजादी का दिखावा करे और प्रति-क्षण विद्यार्थियों की स्वतन्त्रता छीने ।

यह कैसा सोच ?

बालकों को अन्दर ही अन्दर स्वयं को चाहने दो । उनकी निर्दोष क्रीड़ाओं में अवरोध मत डालो । उनमें अपने दोष आरोपित न करो । तुम नहीं जानते कि बालकों से तुम ईर्ष्या तक कर सकते हो । तुम्हें पता नहीं कि उनके निर्दोष आनन्द को तुम सहन तक नहीं कर सकते । तुम्हें कल्पना तक नहीं हो सकती कि उनमें अपने दोष आरोपित किये बिना तुम्हें संतोष नहीं होता ।

हमारी शाला, हमारी शिक्षा !

हमारी शाला शिक्षण की प्रयोग भूमि नहीं थी । वह क्रीडांगण नहीं थी, नाट्यशाला नहीं थी, संग्रहालय नहीं थी । वह कला मन्दिर नहीं थी, और बगीचा भी नहीं थी ।

टूटी-फूटी चार दीवारें, मैला कुचैला उखड़ा हुआ आँगन, दागों से भरी बैंचें, टूटी हुई पट्टियां और फटी हुई किताबों वाले हम; और डंडा लिये फिरते हमारे शिक्षक !

यह थी हमारी शाला !

और हमारी पढ़ाई, याने सूचनाएं, सूचनाएं, सूचनाएं ! ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान ।

बाल-साहचर्य

पढ़ना और पढ़ाना जानेंगे तो पता लगेगा कि कितना बेशकीमती लाभ है यह ! इन सार्थक क्षणों की महत्ता जानने वाले ही जीवन के गहन रहस्य को पा सकते हैं ।

बालकों का साहचर्य, याने खुशबू से सराबोर बाग का साहचर्य ! फिर भी बहुत-से लोग ऐसे हैं, जो बालकों के बीच, उनके साथ आनन्द नहीं ले सकते । ऐसे लोग खुशबू के लिए पैदा नहीं हुए हैं ।

आज की शिक्षा

प्रतिक्षण दुनिया अपना इतिहास रच रही है । सृष्टि की भौगोलिक परिस्थिति प्रतिक्षण अपने में परिवर्तन ला रही है । इन्हीं तमाम विवरणों को कितने ही वर्षों बाद इतिहास और भूगोल में दर्ज किया जाएगा ।

उस पुराने इतिहास और बासी भूगोल की बजाय जो माता-पिता और शिक्षक अपने बच्चों को वर्तमान इतिहास और भूगोल का ज्ञान देंगे, वे ही उनके सच्चे गुरु कहलाएंगे।

लाभ का सौदा

बालक के पालन-पोषण में माता और पिता दोनों की बराबर जिम्मेदारी है। पिता यह जिम्मेदारी अकेली मां पर डाल कर बहुत बड़ा पाप करता है।

सूक्ष्मता से देखने वाले को पता चलेगा कि बालक बूढ़ा हो जाने तक अपनी मां को याद करता रहता है, और पिता से प्रायः घृणा करता है।

आपका बालक आपको न चाहे, इससे बड़ी और क्या आपत्ति हो सकती है?

आपका बालक आपको चाहने लगे, इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है?

पाँच मिनट

दिन भर में सिर्फ पांच मिनट के लिए ऐसा सोचकर तो देखें:

मान लें, बच्चे हमारे अधिकारी हैं, और हम उनकी आज्ञा मानने वाले, तो?

मान लें, बच्चे ही हमारी जिंदगी से सम्बन्धित नीति-नियम बनाने वाले हैं, और हमें तो सिर्फ बिन-बोले उनका अमल करना है, तो?

मान लें, बच्चे ही हमें पढ़ाने बैठे हैं, हमें खेला रहे हैं, हमें घुमाने ले जा रहे हैं, हमें तो बस उनके कहे अनुसार काम करना है, तो? दिन भर में सिर्फ पांच मिनट के लिए ऐसा सोचकर देखा करें!

तो?

मान लें कि बालक तुमसे कहता है—पापा, मैं जरा लिख रहा हूं, जोर-जोर से बातें करके मुझे खलल मत पहुंचाओ।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है कि आज तो मेरे मित्र लोग मिलने आए हैं, इसलिए मैं खाना खाने जरा देर से आऊंगा।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है कि आप बड़े लोग नियमित रूप से अपना काम नहीं करते, यह तो अच्छी बात नहीं।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है कि आज विद्यालय जाने की इच्छा नहीं है, जरा गुरुजी को प्रार्थना पत्र लिख दें कि वह आज नहीं आएगा।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है कि आप कपड़ों को गंदा रखते हैं, जूते मैले रखते हैं, यह तो ठीक नहीं। यह मुझको पसंद नहीं। बड़ों को यह शोभा नहीं देता।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है—देखो मां, यूं झूठ मत बोलो। झूठ बोलोगी तो पाप लगेगा। सुनो, कल से सच बोलना।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है कि पैसे यूं खर्च कर देने को नहीं होते। बेकार किताबें और कपड़े खरीदते हैं, यह अच्छा नहीं।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है, देखिए, हमारे साथ व्यवहार करना आपको नहीं आता, इसलिए बालकों से कैसे व्यवहार करें इस सम्बन्ध में अमुक किताब पढ़िए।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है, देखिए, आप मां-पापा आपस में लड़ेंगे तो आपको घर में घुसने न दूंगा, खाना भी न दूंगा।

मान लें कि बालक तुमसे कहता है, कि आपको बराबर काम-धंधा नहीं आता, इसलिए मास्टर रखना पड़ेगा . . . तो ?

नया अनुभव

घड़ी भर राजकीय प्रपंच छोड़ दो और अपने बालक के संग खेलो ।

घड़ी भर वकीली दांव-पेच छोड़ दो और अपने बालक के संग खेलो ।

घड़ी भर व्यापार की सिरपच्ची छोड़ दो और अपने बालक के संग खेलो ।

घड़ी भर काव्य-संगीत को छोड़ दो, और अपने बालक के संग खेलो ।

घड़ी भर भाई-बंधु, मित्रों को छोड़ दो और अपने बालक के संग खेलो ।

घड़ी भर प्रभु-भजन को छोड़ दो और अपने बालक के संग खेलो ।

घड़ी भर समग्र जीवन को बिसरा दो और अपने बालक के संग खेलो ।

घड़ी भर इस गड़बड़ झाला दुनिया को फेंक दो और अपने बालक के संग खेलो ।

राज की बात

तुम सबसे आखिरी कतार में हो, तब भी कोई चिंता की बात नहीं ।

जो लोग आज पहली पंक्ति में हैं, वे भी कभी आखिरी पंक्ति में थे। उन्होंने बहुत परिश्रम किया, कठोर उद्यम किया, कई-कई झंझावातों में भी नहीं डिगे, आगे बढते गए, इसीलिए वे आज सबसे आगे हैं ।

जो लोग आगे नहीं बढ़े, बैठे रह गए, वे पीछे हटते गए । वे गिर पड़े, पीछे रह गए । वे आज कहीं नहीं दिखते । उनका नाम-निशान तक नहीं रहा ।

सौभाग्यवश, तुम अभी आखिरी कतार में हो । अब तुम तैयार हो जाओ और आगे कदम रख दो । फिर पीछे न हटना ।

पहला काम

यूं बैठे-बैठे बातें करने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे ।

यूं बैठे-बैठे निंदा करने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे ।

यूं पड़े-पड़े सपने देखने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे ।

यूं रोते-रोते ईश्वर से याचना करने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे ।

आगे बढना है तो उठो, मेहनत करो, और जब तक अपने वांछित लक्ष्य तक न पहुंच जाओ, तब तक काम करते रहो ।

साधना का पहला अंग कर्म है, पहले उसी को साधो ।

लड़ाइयाँ

जब तक हमारे आसपास गंदगी है, तब तक हमारी स्वच्छता भी टिकने वाली नहीं है ।

जब तक हमारे आसपास संक्रामक रोग हैं, तब तक हमारा आरोग्य भी सही-सलामत नहीं है ।

जब तक हमारे आसपास दरिद्रता है, तब तक हमारी रोटी भी निर्भय नहीं है ।

जब तक हमारे आसपास चोर, लुटेरे व हत्यारे हैं, तब तक हमारे प्राण भी सुरक्षित नहीं हैं।

जब तक हमारे आसपास निरक्षरता, अज्ञान, अंधकार, वहम, जड़ता, गलत रिवाज़, रूढ़ियां मौजूद हैं, तब तक हमारा ही जीवन स्वस्थ नहीं, सुखी नहीं।

और कुछ नहीं तो हम अपने हित के लिए ही लड़ें। गंदगी, संक्रामक रोग, दुष्टता, दरिद्रता और निरक्षरता के सामने खड़े होकर संघर्ष करें। दुनिया में चल रही अनेक लड़ाइयों में से किस लड़ाई में हम कूदेंगे!

अपना मूल्यांकन

मनुष्य थोड़ा-सा भी प्रगति की राह पर बढ़ने लगता है कि तभी उसके मन में जन्मे हुए कई-कई भूत आकर उसे अवगति के रास्ते ले जाते हैं। उनमें से मुख्य तो है श्रेष्ठता का भान—प्रगति करने का भान।

मनुष्य जरा-सा स्वच्छ रहना सीखता है कि तभी उसकी स्वच्छता का भान इसे मलिन कर जाता है। अपने अलावा सबों को वह अस्वच्छ समझ कर उनसे नफरत करने लगता है।

मनुष्य थोड़ा-सा संयमी बनता है कि तभी उसे सारी ही दुनिया असंयमी लगने लगती है और उससे मन ऊबने लगता है।

वह थोड़ा-सा लिख-पढ़ जाता है, तो स्वयं को अनपढ़ से ऊंचा समझता है; कुछ जान जाता है तो न जानने वाले से स्वयं को श्रेष्ठ समझता है; स्वयं कुछ सीख जाता है, तो बिन-सीखे से अपने को

बढ़ कर मानता है; स्वयं कुछ करता है तो न कर सकने वाले की तरफ मुंह बनाता है।

इसी का नाम है अवनति। स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को कनिष्ठ—हलका समझने का खयाल ही मनुष्य की प्रगति का रोड़ा है।

सच्ची प्रगति का लक्षण यह है: अपने बारे में असंतोष हो, कि "वांछित प्रगति अब तक कहां की है", और जो लोग उस ऊंचाई तक पहुंच गए हैं उनके प्रति अथाह सम्मान हो, कि "उन्होंने कितनी प्रगति की है", साथ ही साथ जो कुछ भी प्रगति नहीं कर सके, उनके प्रति उत्कृष्ट संवेदना का भाव हो, कि "ये लोग उन्नति की राह पर कब आगे बढ़ेंगे!"

प्रगतिशील मनुष्य को हर समय अपनी पड़ताल करते रहना चाहिए।

करणीय

आपके दिमाग में यह बात है कि बालक के लिए कुछ न कुछ किया जाना चाहिए। मान लें, आप बालक के वास्ते फकत एक ही काम करना चाहते हैं, तो क्या करेंगे?

"बालक को मारपीट न करना।"

मान लें, आप दो काम करना चाहते हैं, तो क्या-क्या करेंगे?

"बालक को न डांटना, न उसका अपमान करना।"

मान लें आप तीन काम करना चाहते हैं, तो क्या-क्या करेंगे?

"बालक को न डराना, न लालच देकर समझाना, न 'माई-बाप' कह कर उकसाना।"

मान लें, आप चार काम करना चाहते हैं. तो क्या-क्या करेंगे ?

"बालक को बार-बार सीख न देना, बार-बार न लडाना-चढ़ाना, बार-बार ऐब न ढूंढना, बार-बार रौब न जताना।"

और मान लें, आप पांच काम करने की इच्छा रखते हैं....तो ?

"तो बालक की हर अव्यावहारिक जिद को पूरा करने की बजाय उसे समझाना, उसे इच्छित काम करने की आजादी देना, उसके काम को तुच्छ न समझना, उसके काम में व्यवधान न डालना, उसका काम न छीनना।"

शिक्षा का नया युग

बातें करने से कुछ नहीं होगा।

हमने पढ़ा, सोचा, लिखा। हमने भाषण दिये। लोगों ने सुना और वाहवाही कर उठे। पर ये सब थोथी बातें हैं।

क्या बातों से नए विद्यामंदिर बने हैं कभी ? बातों से क्या पाठ्यक्रम रचे गए हैं ? बातों से ही कभी इतर-वाचन पूरा हुआ है ? क्या नए प्रयोग किये जा सके ? क्या कोई बदलाव लाया गया ? सचमुच कुछ नहीं हो पाया।

हम लोगों को काम करना पड़ेगा। अविरल निरंतर मेहनत करनी पड़ेगी। शिक्षा में नया युग लाना चाहते हैं तो यूं कोई खेल की बात नहीं कि आरामकुर्सी में बैठे-बैठे लेख लिखवाए और नवयुग आ जाये ! प्रत्येक मार्ग हरि के मार्ग की तरह उद्यमियों का है, शूरों का है, कायरों का वहां क्या काम !

हमें शिक्षा का नया मन्दिर बनाना है। बहुत अर्से से अपूज्य रहने

वाली जन-सरस्वती की पुनः स्थापना करनी है और इस मन्दिर को नए मंत्रोच्चारों के घोष से गुंजाना-जगाना है।

नए युग के लिए, आइये, काम करना शुरू करें। बातें करने से तो वह आने से रहा।

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधयत।

सूक्ष्म दृष्टि

शुरू-शुरू में बालक हरेक काम को स्थूल रूप से किया करता है, आगे चलकर उसी काम में बारीकी और सूक्ष्मता आ जाती है।

रंग की मोटी-मोटी लकीरें खींचते-खींचते वह पतली लकीरें खींचना सीख जाता है।

शुरू-शुरू में बालक की भाषा भी मोटी होती है, याने मात्र जरूरत को पूरा करने वाली, आगे चलकर वही भावयुक्त और सूक्ष्म बनती जाती है।

शुरू-शुरू में बालक का बैठना, उठना, खाना, पीना, बोलना आदि काम बेताले-बेढ़ंगे लगते हैं, पर आगे चल कर वे सौंदर्यपूर्ण लय-ताल-बद्ध, संतुलित दिखने लग जाते हैं।

याने विकास के साथ बालक स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता जाता है, शिक्षण में यह एक महत्त्वपूर्ण विचार है। एकाएक सूक्ष्म-दृष्टि का का आग्रह रखना भूल है। विकास के साथ ही मनुष्य की दृष्टि आगे बढ़ेगी, और क्रमशः वह प्रगति करता जाएगा।

विकास का यह क्रम स्वाभाविक है। यह बात हम शिक्षकों को सदैव ध्यान में रखनी होगी।

एक अनुभूत सिद्धान्त

नन्हा बालक किसी बाहरी कारण से या किसी की आज्ञा पूरी करने के लिए बोलने-चलने की जहमत नहीं उठाता। वह गिरता है, पड़ता है, बोलने में उसे बहुत परिश्रम करना पड़ता है, लेकिन सच पूछो तो उसे उसी में आनन्द आता है, क्योंकि इसी में उसका विकास निहित रहता है।

आन्तरिक विकास की प्रत्येक क्रिया आनन्द के साथ ही होती है, और होनी भी चाहिए। यह आनन्द तभी उत्पन्न होता है, जब विकास की क्रिया में बाहर का वातावरण विक्षेप पैदा न करें।

स्वयंस्फूर्ति और स्वयं शिक्षण दोनों साथ-साथ चलते हैं। यदि शिक्षण एक आंतरिक आवश्यकता है तो मनुष्य को उसे स्वयं प्राप्त करना पड़ता है। दूसरों की कोशिश बेकार जाती है। इससे यही सिद्धान्त निकलता है कि कोई किसी को पढ़ा नहीं सकता।

एक नया विचार

हमारे सामने लाखों बालकों का सवाल है। उनका समाधान व्यापक पैमाने पर किया जाना चाहिए।

यह सवाल किसी व्यक्ति का नितांत वैयक्तिक नहीं है, एकाध धनी-मानी का, एकाध अध्यापक का, या अकेले शिक्षा विभाग का नहीं है। एक तरफ से देखें तो सवाल समस्त राज्यों का है, दूसरी तरफ से देखें तो सम्पूर्ण देशवासियों का है।

इसका समाधान यों हो सकता है कि स्थान-स्थान पर हम "बाल क्रीडांगण" स्थापित करें। प्रत्येक गांव में बाल-क्रीडांगण हों, जो बालकों के विकास हेतु खेल उपलब्ध कराएं। ये शहर की हर गली में भी खोले जाएं।

बाल क्रीडांगण के उद्देश्य हों : तीन से सात साल के, याने प्राथमिक शाला में प्रवेश-योग्य वय के बालकों को गली की विविध बुराइयों से बचाना, उन्हें माता-पिता के अति लाड़-प्यार से, लापरवाही, जुल्म, अथवा घर के प्रतिकूल वातावरण से बचाना, बालक को उसकी विकासमान इंद्रिय एवं मन को पोषित करने वाला ऐसा सुखी एवं स्वस्थ वातावरण तथा क्रियाएं देना जो शैक्षिक नजरिये से रचित हो।

ऐसे बाल-क्रीडांगण गांव के हर सिवान में और गांवड़ा हो तो हर रहवान में स्थापित किया जाना चाहिए।

नींव की मजबूती

भवन की स्थिरता उसकी मजबूत नींव पर निर्भर करती है, यह एक सामान्य नियम है, फिर ठेठ ऊपरी मंजिल से नीचे तक इमारत को बनाते-बनाते नींव को मजबूत बनाने की विचित्रता केवल कल्पना में ही संभव हो सकती है, ऐसा कोई न सोचे। यह भी एक वास्त-विकता है, और वह भी शिक्षा जगत की !

आज हमारा लक्ष्य भवन की उच्चतम मंजिल को सुन्दरतम बनाने की तरफ केन्द्रित है, तभी तो हमारे कॉलेज भव्य हैं और विकट ज्ञानवान विद्वानों से अंटे पड़े हैं। विशालकाय मंदिरों जैसे इनके शिक्षण-स्थल हैं, पर इनकी नींवें क्षारीय भूमि में बनी हैं। भवन का निर्माण गारे से हुआ है और बनाने वाले कारीगर गरीब, अज्ञानी व प्राणहीन हैं।

सोचने की बात है कि दुनिया का यह सीधा-सादा नियम शिक्षा-जगत में कैसे व्यवहृत हो ? जब तक नींव कमजोर है तब तक ऊपरी मंजिल डगमगाएगी ही, तब तक ऊपर की सम्पूर्ण शोभा जोखिम से भरी हुई है, तब तक यह सारी चकाचौंध कृत्रिम है, बनावटी है।

हम सब लोगों को मिलकर आज एक ही काम करना है, और वह है वर्तमान शिक्षा की इमारत को तोड़कर ध्वस्त करने का, और फिर नए सिरे से मजबूत पत्थरों की गहरी नींव भरने का। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो कुदरत प्रलय ढा कर या आग लगाकर इस स्थूल भवन को तोड़ डालेगी। प्रकृति हम पर कोप करेगी, जिसका परिणाम एकाएक हमें भोगना पड़ेगा।

ऐसी गलती न करें

माता-पिता अगर यह सोचते हैं कि हम चाहे जैसा बर्ताव करें, फिर भी अपने बालकों को आचरणवान और श्रेष्ठ बना लेंगे, तो वे भूल करते हैं।

माता-पिता और घर दुनिया में सबसे महान और शक्तिशाली शालाएँ है, जहां बालक ने जो कुछ सीख लिया वह फिर से भुलाया नहीं जा सकता। घर की सीख कभी मिटाई नहीं जा सकती। कारण यह कि उसका असर बहुत गहरे तक पहुंचता है।

अगर बालक माता-पिता के घर में बिगड़ जाते हैं तो बड़े-बड़े शिक्षक, मनोविज्ञानवेत्ता, और विद्वान भी उन्हें सुधारने के प्रयास में असफल रहते हैं।

शाला की बुराइयाँ

एक तरफ गुरु-परम्परा पद्धति बंद होती जा रही है और आदर्श शिक्षक उपलब्ध होने भी बंद हो गए। दूसरी तरफ जीवन को शिक्षा से अलगाया जा रहा है। इससे शिक्षा द्वारा जीवन की जो तैयारी होनी चाहिए थी, उस तैयार की आधार-स्वरूप धार्मिक शिक्षा एवं धार्मिक जीवन लुप्त हो चले।

उधर विद्यालयों में अंक देने की, इनाम देने,और मनुष्य को स्पर्धावान बनाने की कुरीतियां प्रविष्ट हो चुकी है, परिणामत: मनुष्य

स्वार्थी, स्पर्धालु, आलसी, आराम-तलबी और धर्महीन बन चुका है। तभी तो चारों तरफ लक्ष्मी की पूजा चल रही है। जीवन का उद्देश्य भी द्रव्य-प्राप्ति बन चला है।

शिक्षा के आयोजकों को चाहिए कि शिक्षा-पद्धति में धार्मिक-नैतिक जीवन को, गुरु-परम्परा तथा आदर्श शिक्षक को अग्रिम स्थान दें। शालाओं से स्पर्धा पैदा करने वाली तमाम कुरीतियों को बहिष्कृत करें। लोभ, लालच या ऐसी ही तमाम प्रवृत्तियों को, जो हमारे मन को बुराइयों की ओर ले जाएं, दूर करें। मनुष्य जीवन का प्रयोजन आध्यात्मिक सुख हासिल करना है, इसी की प्राप्ति के लिए शिक्षा प्रयत्न करे। वर्तमान शिक्षा पद्धति में से इन समस्त तत्वों को बाहर निकाल दें, जो उक्त ध्येय के विरोधी या विपरीत पड़ते हों।

शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध

मैं तो सिर्फ इंजन में कोयले झोंकने वाला हूं। विद्यार्थी कोयले हैं जिनमें अग्नि समाहित है। मैं तो चिनगारी दिखाने वाला हूं। सुलगने का काम विद्यार्थियों का है।

अगर विद्यार्थी अपने भीतर विद्यमान अग्नि को पहचानेंगे नहीं, चिनगारी को ग्रहण नहीं करेंगे, तो वे सुलगेंगे कैसे? फिर कोई मुझको उलाहना न दे।

मैं तो वर्षा की बूंदों की तरह अपनी वाणी से, अपने वचनों से बरसता रहता हूं। उसे ग्रहण करने वाले हैं विद्यार्थी। अगर विद्यार्थी अपने पात्र को टेढ़ा-तिरछा पकड़े खड़े रहेंगे, तो जाहिर है उनके पात्र में एक भी बूंद नहीं गिरेगी। बरस-बरस कर मैं तो चला जाऊंगा। फिर कोई मुझको उलाहना न दे कि हम तो कोरे ही रह गए।

एक युद्ध लड़ना है

बालक को उसका वांछित स्थान दिलाने के लिए आइए, हम कमर कस लें, लड़ने के लिए हथियार हाथ में उठा लें। बालक के विकास में बाधा डालने वाले हर अवरोध को हमें हटाना है।

इतिहास में भले ही बालकों के कल्याण हेतु शिक्षकों ने और माता-पिताओं ने कोई लड़ाई न की हो, हम करेंगे।

इस युद्ध में हमें जात-पांत और रंग-भेद को भुला देना पड़ेगा। एक मात्र बालक के लिए, समग्र मानव-जीवन की आशा के लिए, समग्र मानव-जीवन की मानवीयता के सुपरिणाम के लिए हमें विजयी युद्ध छेड़ना है। यह युद्ध अपनी संकीर्णता, पूर्वाग्रह, अज्ञान, अपनी गुलामी, भेदभाव, नास्तिकता के सामने भी छेड़ना है। पहले हमें इन सबों से स्वतन्त्र होना पड़ेगा, तभी बालक के लिए हमारा युद्ध पूरा हो पाएगा और तभी हमारा दायित्व—हमारा जीवन कर्म पूरा हो पाएगा।

परीक्षाइ नज़रिया

परीक्षा ने व्यक्ति को अपने प्राणों की खोज से रोका है, आत्मज्ञान के मार्ग से उसे च्युत किया है, तभी तो वह अपना पूरा जीवन दूसरों के नज़रिये से व्यतीत करता है, और आत्मज्ञान के बदले परायों की पंचायती में हाजिर रहता है।

परीक्षा बाहर की नहीं, भीतर की होनी चाहिए। परीक्षा ज्ञान की नहीं, शक्ति की होनी चाहिए। परीक्षा यथार्थ की नहीं, विकास की होनी चाहिए। उसे परार्थ के बजाय आत्मार्थ होना चाहिए। और परीक्षक भी बाहर का नहीं, आन्तरिक होना चाहिए।

सबसे आसान

क्या हम लाखों बालकों को गलियों में भटकने देंगे?

शाला से बाहर, घरों से बाहर गलियों में बालक क्या करते हैं, पता है? अगर तुम्हें पता होता तो बालकों को अनीति एवं बुरी आदतों की शाला रूपी गलियों से कब का बचा लिया होता।

या तो बालकों को घर में ही अच्छे-अच्छे काम करने को दिये जाएं, या लंबी अवधि की शालाएं खोलें, या फिर गलियों और मोहल्लों में बाल-क्रीड़ांगण स्थापित करें। सबसे आसान और सस्ता है बाल-क्रीड़ागण।

सही अवलोकन

अवलोकन से ही अनुभव जनमता है। अनुभव का संग्रह याने ज्ञान। ज्ञान याने एक शक्ति और शक्ति का सदुपयोग याने उन्नति का मार्ग।

पर अधूरा अवलोकन अनुभव को धुंधला, निस्तेज और अपूर्ण रखता है। पूर्व ग्रहों वाला अवलोकन अनुभव को भी रंगीन बना देता है। रंग पक्ष में भी दिखता है और विरुद्ध भी। अवलोकन की कला जाने बिना अवलोकन अस्तव्यस्त होता है, सुन्दर नहीं होता, और इससे उद्भूत अनुभव भी वैसा ही होता है। अवलोकन एकांगी होगा तो अनुभव भी वैसा ही होगा। अवलोकन आत्मपरक और वस्तुपरक भी होता है। पूरा आधार अवलोकन पर है। इसलिए अवलोकन सोच-समझ कर सही-सही करो।

नींव की मजबूती

भवन की स्थिरता उसकी मजबूत नींव पर निर्भर करती है, यह एक सामान्य नियम है, फिर ठेठ ऊपरी मंजिल से नीचे तक इमारत को बनाते-बनाते नींव को मजबूत बनाने की विचित्रता केवल कल्पना में ही संभव हो सकती है, ऐसा कोई न सोचे। यह भी एक वास्तविकता है, और वह भी शिक्षा जगत की !

आज हमारा लक्ष्य भवन की उच्चतम मंजिल को सुन्दरतम बनाने की तरफ केन्द्रित है, तभी तो हमारे कॉलेज भव्य हैं और विकट ज्ञानवान विद्वानों से अंटे पड़े हैं। विशालकाय मंदिरों जैसे इनके शिक्षण-स्थल हैं, पर इनकी नींवें क्षारीय भूमि में बनी हैं। भवन का निर्माण गारे से हुआ है और बनाने वाले कारीगर गरीब, अज्ञानी व प्राणहीन हैं।

सोचने की बात है कि दुनिया का यह सीधा-सादा नियम शिक्षा-जगत में कैसे व्यवहृत हो ? जब तक नींव कमजोर है तब तक ऊपरी मंजिल डगमगाएगी ही, तब तक ऊपर की सम्पूर्ण शोभा जोखिम से भरी हुई है, तब तक यह सारी चकाचौंध कृत्रिम है, बनावटी है।

हम सब लोगों को मिलकर आज एक ही काम करना है, और वह है वर्तमान शिक्षा की इमारत को तोड़कर ध्वस्त करने का, और फिर नए सिरे से मजबूत पत्थरों की गहरी नींव भरने का। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो कुदरत प्रलय ढा कर या आग लगाकर इस स्थूल भवन को तोड़ डालेगी। प्रकृति हम पर कोप करेगी, जिसका परिणाम एकाएक हमें भोगना पड़ेगा।

प्रकाशक एवं वितरक :

गुजराती समाज द्वारा हिम्मत लाल पारीख

कोट गेट, बीकानेर-334 001

मुद्रक : सांखला प्रिन्टर्स, सुगन निवास, चन्दन सागर, बीकानेर